परहित सरिस धर्म नहिं भाई

Parhit Saris Dharam nahi Bhai

प्रस्तावना : पशुता के बाद जब हमने मनुष्यता के क्षेत्र में पदार्पण किया, तो सर्वप्रथम सभी जाति और देश के मनीषियों ने मनुष्यता की रक्षा लिए और इसे अधिक से अधिक सुन्दर बनाने के लिए अनेक प्रकार के गुणों तथा अनेक प्रकार के सिद्धान्तों का निरूपण किया। हम किस प्रकार पशुता के ऊपर उठकर मानवता के उच्च धरातल पर पहुँच जाएँ। कैसे जीवन में सुख और शान्ति पा सकें। इसके लिए अनेक प्रकार के विधि-विधान बनाए गए। धर्मों की स्थापना हुई और धर्म-ग्रन्थों की रचनाएँ हुईं। सदाचार तथा नैतिकता सम्बन्धी अनेक नियमों और विधियों का निर्देशन किया गया। इन्हें मानव धर्म की संज्ञा दी गई। सत्य-भाषण. सच्चरित्रता और परोपकार आदि को सर्व धर्म-सम्प्रदायों में समान महत्त्व दिया गया। इन्हीं सदाचरणों में से परहित भी एक है। दूसरे के हित-साधन में सहायक होना ही 'परहित' कहलाता है। निःसन्देह परहित जैसा संसार में कोई दूसरा धर्म नहीं। यही सब धर्मों का मूल प्राण है।

परहित का अर्थ : 'परहित' शब्द दो शब्दों के मेल से बना है। पर+हित अर्थात् दूसरों की भलाई। इसी को दूसरे शब्दों में पर+उपकार भी कह सकते हैं; क्योंकि दोनों निर्माण एवं भावार्थ की दृष्टि से एक ही समान हैं। यदि एक में दूसरे के हित की भावना निहित है, तो दूसरे में उपकार की भावना छिपी हुई है। वैसे परोपकार का व्यापक अर्थ है नि:स्वार्थ भाव से दूसरों का उपकार करना। अपने हित की चिन्ता न करते हुए दूसरों की भलाई करना ही सच्चे अर्थों में 'परोपकार' है। जो कि मानव-चरित्र का एक प्रधान अंग है। वास्तव में परोपकार एक दिव्य गुण है।

धर्म की परिभाषा : 'धार्यते इति धर्म:' अर्थात् जिससे हमारा धारण हो सके, दूसरे शब्दों में जिससे हम समाज में भली प्रकार से सुरक्षित रूप से रह करके अपना कार्य कर सकें, वही धर्म है। वैसे तो धर्म का रूप बडा ही विस्तृत है। प्रतिक्षण हमारे धर्म के बाह्य रूप परिवर्तित होते रहते हैं।

समन्वयात्मक रूप में दोनों मानव चरित्र के प्रधान अंग- सामाजिक प्राणी होने के कारण हमारा सबसे बड़ा धर्म है कि हम स्वत: जियें और दूसरों को भी जीने दें। हमें अपने जीवन में समाज के अन्य लोगों से पग-पग पर सहयोग लेना पड़ेगा। हम यदि यह अपेक्षा करते हैं कि यदि हमारे पास पुस्तक नहीं है, हमें पढ़ने को केवल दो दिन के हेतु दूसरे व्यक्ति की पुस्तक चाहिए, तो हमारा भी यह पावन कर्तव्य हो जाता है कि जिस व्यक्ति के पास पुस्तक तो है; परन्तु उसे लिखने को कलम चाहिए, तो हमें उसको कलम देनी चाहिए, यही हमारा धर्म है। वैसे यदि देखा जाए, तो इसी को हम उपकार या परोपकार भी कहते हैं। इस दृष्टिकोण से धर्म और परोपकार दोनों एक ही हैं। दोनों में कोई भेद नहीं है। परन्तु यदि हम और विशाल रूप से देखें, तो परहित या परोपकार में बदले की भावना नहीं होती है। हमारा हित कोई चाहे या न चाहे; परन्तु हम दूसरे का हित ही चाहेंगे; यही है सच्चे परहित या परोपकार की भावना । यह मानवता की कसौटी है। वस्तुत: मानवता परहित से ही विभूषित होती है जैसा कि स्वर्गीय राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त जी का कथन है-**"वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ।"**

सत्य है, वह मानवता क्या जो अपने स्वार्थ-साधन की चिन्ता में लिप्त रहे। सच्चा मानव तो वह है जो अपने सुख-दु:ख के साथ दूसरों के सुख-दु:ख को भी देखता है और अपने स्वार्थ को छोड़कर दूसरों का हित-चिन्तन करता है। केवल अपने सुख-दु:ख की चिन्ता करना, अपना ही स्वार्थ सिद्धि करना मानवता नहीं वरन् पशुता है, गुप्त जी के मत से-**"यही पशु प्रवृत्ति है कि आप-आप ही चरे ।"**

अत: परहित ही हमारा सच्चा धर्म है जो कि मानवता का लक्षण है।

परोपकार का महत्त्व : परोपकार एक महान् और मानवोचित भावना है। परोपकार के द्वारा ही मानवता उज्ज्वल होती है। अत : इसकी महत्ता अनन्त है। समस्त मानवीय गुणों में परोपकार को सर्वोच्च स्थान देने का एक कारण, तो यह है कि जन्म से लेकर के मृत्यु तक हम माता-पिता और गुरु आदि न जाने कितनों के ऋणी बन जाते हैं। जिनका कर्ज चुकाने हेतु हमें इस वृत्ति को धारण करना आवश्यक है। हम जितना ही दूसरों का हित करते हैं उतना ही दूसरों से सम्मान प्राप्त करते हैं 'हित अनहित पशु-पक्षिहु जाना' के अनुसार हम जिसका हित करते हैं वह कभी-न-कभी हमारे काम आता है। परोपकारी व्यक्ति

सच्चाई और ईमानदारी को अपनाता है जिससे समाज में उसका यश बढ़ता है। सम्पूर्ण मानव-समाज की प्रगति परोपकार पर ही निर्भर है।

व्यक्तिगत जीवन में भी परोपकार का बड़ा महत्त्व है। इसके बिना मनुष्य के गुणों का विकास सम्भव नहीं है। परोपकार से मनुष्य का हृदय निर्मल होता है और दया, क्षमा और दानशीलता इत्यादि गुणों से वह पूर्ण हो जाता है। परोपकार वह चमकीली कलई है जो मनुष्यों को उनके गुणों सहित चमका देती है। सब लोग परोपकारी को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। उसकी कीर्ति पताका युगों तक फहराती है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में-

"उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती,

उसी उदार से धरा कृतार्थ-भाव मानती ।।

उसी उदार की कथा सदा सजीव कीर्ति पूँजती,

तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती ।।"

वस्तुत: परोपकार करने वाले ही संसार में यश प्राप्त करते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के मन में उनके लिए श्रद्धा होती है। वे मरकर भी अमर रहते हैं। इसीलिए तो पुराणों एवं शास्त्रों में भी परोपकार का बहुत अधिक महत्त्व बतलाया गया है-

"अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयम् ।।

परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् ।।"

वास्तव में परोपकारियों की शोभा परोपकार से होती है, अन्य किसी वस्तु से नहीं।

परहित के विभिन्न स्वरूप : मनुष्य अपनी सामर्थ्य के अनुसार विभिन्न ढंगों से परोपकार कर सकता है। दूसरों के प्रति सहानुभूति करना ही परहित है; यह सहानुभूति किसी भी रूप में प्रकट की जा सकती है। परहित तन-मन और धन तीन प्रकार से किया जा सकता है। दीन-दुखियों, घायलों एवं अपाहिजों की सेवा-सुश्रुषा तन (शरीर) से की जा सकती है। हम अपने मन से 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे भवन्तु निरामय:' की भावना रख सकते हैं; क्योंकि

अधिकाधिक जनों के मनों द्वारा की गई कामना अवश्यमेव फलीभूत होती है। धन से अनाथालय, औषधालय, पाठशालाएँ, गोशालाएँ और धर्मशालाएँ इत्यादि। बनवा कर परहित किया जा सकता है। परहितार्थ तालाब और कुएँ खुदवाए जा सकते हैं। नल एवं बागीचे भी धन से ही लगवाए जा सकते हैं। किसी को संकट से बचा लेना, किसी को कुमार्ग से हटा लेना, किसी दु:खी और निराश को सान्त्वना देना- ये सब परहित के ही रूप हैं। कोई भी कार्य, जिससे किसी को लाभ पहुँचता है परोपकार है, जो अपनी सामर्थ्य के अनुसार अनेक प्रकार से किया जा सकता है। अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार परहित के अनेक ढंग हो सकते।

परोपकारियों के उदाहरण : हमारे इतिहास और पुराणों में परोपकारी विभूतियों के अनेक दृष्टान्त हैं। पुराणों में परोपकार के लिए अपना सर्वस्व देने वालों की कीर्ति का वर्णन है। वे मरकर भी आज तक जीवित हैं। उदाहरण के लिए संक्षेप में-

"क्षुधा रन्तिदेव ने दिया करस्थ थाल भी,

तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थि जाल भी ।

उशीनर क्षितीश ने स्व मास दान भी किया,

सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर-चर्म भी दिया।।"

इस प्रकार एक नहीं अनेक उदाहरण मिलते हैं। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र ने तो सम्पूर्ण राज्य ही दान में दे दिया। महर्षि दयानन्द ने तो घातक विष देने वाले रसोइये जगन्नाथ को मार्ग व्यय के लिए धन देकर के उसकी रक्षा की थी। जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी ने अपनी दिव्य वाणी से ही समाज का बहुत बड़ा उद्धार किया। सप्त ऋषियों ने भी वाणी द्वारा ही 'मरा' जाप का उपदेश देकर वाल्मीकि को पाप से छुड़ाकर सन्मार्ग पर चलाया। एकमात्र वाणी के आधार पर ही महात्मा गाँधी ने जनता-जनार्दन की सेवा की। सम्राट् अशोक ने कुएँ, तालाब एवं नहरें खुदवाकर तथा वृक्ष लगवाकर जनता के साथ उपकार किया। विनोबा भावे जैसे परोपकारी मनुष्य का उदाहरण हमारे देश में विद्यमान है।

परहित का आदर्श रूप : मानव ही नहीं अन्य स्थावर तथा जंगम प्राणी भी परहित में संलग्न दिखाई देते हैं। जटायु जैसे पक्षी ने भी परोपकार के लिए ही अपने प्राणों तक का

उत्सर्ग कर दिया था। यह परहित की प्रवृत्ति वृक्ष एवं नदियों तक में पाई जाती है, उनकी गणना भी कबीर जैसे सत ने सज्जनों में ही की है-

वृक्ष कबहूँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर ।।

परमारथ के कारने, साधुन धरा शरीर ।।"

संस्कृत मनीषियों के अनुसार तो वृक्ष एवं नदियों के साथ ही धूम, ज्योति, मारुत एवं जलमय निर्जीव मेघ भी अपने लिये नहीं बरसता, उसमें भी परोपकार की भावना निहित होती है-

परहितार्थ ही गायें दुग्ध प्रधान करती हैं और यह हमारा मानव-शरीर भी परहितार्थ ही निर्मित है।

उपसंहार : संसार में अवतरित होने के पश्चात् हमारा परम पावन कर्तव्य है कि हम नि:स्वार्थ भाव से परोपकार की भावना को अपने हृदय में धारण करें। परोपकार में यश प्राप्ति की भावना वर्जित है। मन, वाणी अथवा कर्म से किसी को पीडा पहुँचाना हमारे जीवन के लिए कलंक स्वरूप है। संसार के सम्पूर्ण कर्मो (धर्मों) में परहित ही सबसे महान धर्म है। अन्य सम्पर्ण धर्म तो इसी के अनुगामी हैं। अत: महात्मा तुलसीदास जी का यह कथन अक्षरश : सत्य है –

"परहित सरिस धर्म नहिं भाई ।

पर पीड़ा सम नहिं अघमाई ।"